INTERNATIONAL NEWS AND VIEW CORPORATION
INVC
अंतरराष्ट्रीय समाचार एवं विचार निगम

कहानी संग्रह 'कामरेड का बक्सा' की दूसरी कहानी -: गुफाएं

By : INVC Team Published On : 20 May, 2017 11:43 AM IST

सूरज बड़त्या की कृति "कामरेड का बक्सा"' शीर्षक कहानी संग्रह (पुस्तक) की सभी कहानियां आई एन वी सी न्यूज़ पर सिलसिलेवार प्रकाशित की जा रही हैं ।

गुफाएं ... सूरज बडत्या की बेहद चर्चित और संवेदनशील प्रेम कहानी है । जहां प्रेम है वहां जीवन है । बेप्रेम मरण है बस । दलित समाज के भीतर के जातिवाद-उपजातिवाद, छद्म अवसरवादी-आंबेडकर भक्तों ,मार्क्सवादियों के पाखण्ड आडम्बरों को बेनकाब कर देती है । दलित साहित्य में अनोखे ढंग की अद्भुत कहानी .... पढियेगा ज़रूर ..... **ज़ाकिर हुसैन** सम्पादक अंतरराष्ट्रीय समाचार एवम विचार निगम (International News and Views Corporation)

- गुफाएं -

अपूर्वा ऑफिस में भी थी और बाहर भी... उसकी मौजूदगी को ऑफिस में कोई झुठला नहीं सकता था, लेकिन अपनी चेतना के साथ बाहर होने की बात अपूर्वा भी झुठला नहीं सकती थी. मन का द्वैत ही तो था यह. जीवन की रोशनी ने उसे अंधेरे में ला पटका था... घर से वह ऑफिस पहुंचती और फिर न जाने कब समय की चैखट लांघकर 'अपने' अतीत के घर में जा बैठती. उसका मन अतीत में अधिक रमता. वह स्मृतियों को आज के झरोखे में टटोलती तो बदरंग अतीत निराश भी करता कभी-कभी. रोज वह इस पर न सोचने का प्रण करती और अगले ही दिन इसे तोड़ डालती. स्मृतियां उसके लिए यातनाघर थीं, पर उनमें घुसना उसे सुकून देता. स्मृतियों में रवानगी का सफर कभी-कभी नागवार गुजरता, और ऐसा तब होता जब अमन का चेहरा उसके सामने आ जाता.

अपूर्वा और अमन के पारिवारिक जीवन की सुबह सिर्फ आठ महीने में ही सांझ में ढल गयी थी. आठ महीने भी कहां चल पाये थे दोनों साथ, और फिर समय ने सम्बन्धों के अस्त होने का ऐलान कर दिया. समाज बदलने की अमन की चाहतों ने परिवार को पहले तोड़ डाला. सभ्य, शिक्षित और विचारों से वामपन्थी अमन घर में कितना संकीर्ण था यह बात अपर्वा जल्द ही जान गयी थी. अमन ने कहा था, "मैंने शादी घरवालों के दबाव में की है, मुझसे ज्यादा उम्मीद मत रखना." कहां ज्यादा उम्मीदें रखी थी अपूर्वा ने ?

वह बचपन से देखती आयी थी कि पिताजी अगर मां को डांटते थे तो फिर शाम को घर जल्दी आकर उन्हें मनाते भी थी. उनके मनाने का अद्भूत तरीका था. सभी को बाहर घुमाने ले जाते, जैसे अपराधबोध से निजात पाना चाहते हों. खूब सैर-सपाटा... रात का खाना बाहर ही होता. पिताजी अच्छे खाने के शौकीन थे. करोलबाग का एक ढाबेनुमा रेस्तरां 'आंगन' पारिवारिक माहौल के चलते बहुत भाता. चार थाली लेकर पांच जन उसमें आराम से खा लेते. फिर घर लौटते हुए मानुषी आइसक्रीम की जिद करती. छोटी बहन मानुषी और विवेक हमेशा अम्मा-पिताजी के झगड़े का इन्तज़ार करते. झगड़े का कितना सुखद अन्त था... मां अक्सर अपूर्वा को समझाती, "पति की बातों को दिल से नहीं लगाते, उनसे जीवन बंधा होता है. जहां पति है, वहीं जीवन है." अपूर्वा समझ नहीं पाती कि अमन के साथ जीवन है या... जीवन की आस में इंसान मृत्यु तक मोह में फंसा रहता है. फिर दाम्पत्य जीवन... ?

अपूर्वा का पढ़ा-लिखा शिक्षित परिवार था. बाबा साहेब के विचारों में जीवन की सार्थकता तलाशता हुआ. जैसे पिताजी 'शिक्षित बनो' के मन्त्रा का घोलकर पी गये थे. पिताजी के पिताजी यानी दादाजी ठेठ अंगूठा छाप थे, लेकिन उन्हें पंचायती का शौक था. पंचायत में फैसले सुनाते-सुनाते जीवन की व्यावहारिकता को समझ लिया था. पिताजी बताते हैं कि एक बार दादाजी कहीं से सुन आये थे, "अगर जीवन सुधारना है तो पढ़ना होगा और शहर जाना होगा." दादाजी ने आकर पिताजी को बताया था कि अपने लोगों के लिए ऐसा

किसी अपने नेता ने कहा है. उस समय पिताजी छोटे थे, वे क्या समझते... ? दादा जी ने कहा, "इस उम्र में मैं क्या पढ़ूंगा...पर महेशी तुझे पढ़ाऊंगा मैं." उन्होंने यह किया भी था. कुछ दिनों बाद पंचायती झगड़े के कारण दादाजी पिताजी को लेकर दिल्ली चले आये थे. दादी तो थीं नहीं.... वो पिताजी के पांच वर्ष का होते ही एक बीमारी में चल बसी थीं. एक ही बेटा था उनका. दादाजी, दादी को बहुत चाहते थे. पिताजी ने अक्सर उन्हें दादी की तस्वीर से अकेले में बात करते देखा था. वे दादी के इस स्कैच को सहेजकर रखते जो गांव में उनके दोस्त कालू बंजारे ने बनाकर दिया था. तब से उसी को संभाले थे. अब तो वह एक कागज का टुकड़ा था, जिस पर आड़ी-तिरछी रेखाएं तैरती हुई दिखती थीं.

सबके लिए भले ही वे आड़ी-तिरछी रेखाएं हों, लेकिन दादाजी के लिए जीवन का उत्स थीं. मानो रेखाओं की अस्पष्टता से भी जीवन को ताप मिलता था. स्पष्ट जीवन के अनुभव काले-धब्बों से हमेशा सालते साथ रहते. अपूर्वा के लिए स्मृतियां कभी उत्सव के रूप में आतीं, कभी एक खौफनाक तल्खी लिये. ऑफिस में उसकी मेज के ठीक सामने दीवार पर एक कैलेंडर टंगा था. वह रोज उसे देखकर तारीख के अपने अनुमान को दुरुस्त करती. कई बार वह सोचती कि कैलेंडर को वह पीछे या आगे ले जाकर तारीखों को बदल सकती है, पर क्या वह ऐसा अपनी ज़िन्दगी की तारीखों में भी कर सकती है ?

पिता महेश प्रसाद ने दिल्ली यूनिवर्सिटी से बी.ए. कर बैंक में क्लर्क लग गये थे. आज वे बैंक में मैनेजर हैं. तीनों बच्चों को उन्होंने मुक्त नीले आकाश को छू लेने के सपने के साथ पाला था. बुद्ध से लेकर कबीर, रैदास, मीरा, फुले, सावित्री बाई और बाबा साहेब की जीवनियां उन्हें कंठस्थ थीं. अपूर्वा को सपने में पिता की बातें चलचित्रा की तरह दिखतीं. पिता कहते, "सम्मान कमाने के लिए मरना पड़े तो मर जाओ. बिना सम्मान कोई कुछ नहीं....." और कभी कहते, "सपनो से जेबें भरी रहनी चाहिए." तब उनकी कोई बात समझ नहीं आती थी, पर अब लगता है कि पिताजी 'सम्मान' और जीवन की आशा की चमक हमारी आंखों में देखना चाहते थे. लेकिन अपूर्वा द्वारा राजन से शादी के लिए कहने पर पिताजी, मामाजी के साथ कैसे उबल पड़े थे- यह बात अपूर्वा के लिए हैरत में डालने वाली थी. अपूर्वा ने पहली बार पिताजी को कड़ाहे में खौलते पानी-सा पाया था.

अपूर्वा का परिवार जाति से दलित और उपजाति से चमार था. अपूर्वा और भाई-बहनों के जाति प्रमाण-पत्रा के जातिसूचक कॉलम में यही लिखा था. उसे क्या मालूम था कि चमार और जाटव भी ब्राह्मण और शूद्र की तरह आपस में ब्याह नहीं करते. क्या दोनों की सामाजिक श्रेणी में अन्तर है ? राजन चमार नहीं जाटव था. 'सभी दलित एक हैं' पिताजी का यह वाक्य उसे झूठा लगा था. बचपन से पिताजी यही तो सिखाते आये थे कि, "जाति तोड़नी है तो एका करना होगा. सभी दलित एक-सा अपमान सहते हैं, इसलिए बिना एका हुए सम्मान नहीं होगा." 'क्या यह वाक्य बनावटी था... ?' सोचते हुए अपूर्वा की आंख भर आती. आंखों के दोनों कोरों से ढुलककर कुछ बूंदें उसके मुंह के कसैलेपन को गाढ़ा कर देतीं. उसकी स्मृतियों में अमन के साथ गुजारे लिजलिजी अन्तरंगता के चित्रा घुले होते तो कभी राजन के साथ पंख लगाकर उड़ने की चाहत के बिम्ब. यही सब, समय ने उसकी पकड़ से बाहर कर दिया था. दाम्पत्य जीवन की यादें उसके कसैलेपन को गाढ़ा ही तो करती हैं. उसके जीवन में सवालों और द्वन्द्वों का एक अनवरत सिलसिला इन दिनों शुरू हुआ जो आज इतना विकराल हो गया है कि वास्तविक दुनिया और लोगों के भीतर के यथार्थ के बीच सामंजस्य बहुत मुश्किल से होता.

अपूर्वा और राजन की मुलाकात लायब्रेरी में हुई थी. परीक्षा के दिनों में अपूर्वा सवेरे घर से निकलकर लायब्रेरी चली जाती. वहीं पर राजन भी आता. शुरू में अपूर्वा ने कोई विशेष बात नोट नहीं की थी, जिससे उसका ध्यान राजन पर जाता. हम विशेष को ही नोटिस लेते हैं, सामान्य हमारी पकड़ में मुश्किल से आता है. क्या विशेष सम्बन्ध बनने का प्रारम्भ सामान्य से ही होता है ? शायद ऐसा ही है. कम से कम राजन के सिलसिले में तो ऐसा ही था. सामान्य मुलाकातों के क्षणों ने विशेष सम्बन्ध को रचा था लेकिन अगर इसका प्रतिलोमीकरण करें तो अमन के साथ विशेष सम्बन्ध उसे बना-बनाया मिला था. धीरे-धीरे वह सम्बन्ध विशेष से सामान्य की ओर होता गया.

राजन से संवाद की शुरुआत अचानक ही हुई. एक दिन उसे लायब्रेरी जाने में देरी हो गयी. जब वह लायब्रेरी पहुंची तो घड़ी के ग्यारह बजाने की घोषणा के साथ ही लायब्रेरी की सभी सीटों को भर दिया था. उसने इधर-उधर निगाह दौड़ायी, लेकिन कोई भी सीट ऐसी नहीं थी जिसके सामने स्टडी टेबल पर किताबें या बैग न रखे हों. कुछ पल वह यूं ही खड़ी रही और मायूस होकर बाहर की तरफ जाने लगी. उसने देखा कि लायब्रेरी में बैठा एक लड़का उसे बुला रहा है. पहली पुकार को उसने नोटिस नहीं किया, लेकिन उसने पाया कि इशारे में बदतमीजी नहीं थी बल्कि अबकी बार उसने अपने दायें हाथ की उंगलियों से उसे पास आने का संकेत किया. वह झिझकी...लेकिन उस लड़के ने एक कुर्सी से बैग हटाकर संकेत किया तो अपूर्वा खाली सीट पर जा बैठी. उसने लड़के को थैंक्स कहा था. वह दोपहर का लंच साथ ही लेकर जाती थी. खाने का कोई निश्चित समय नहीं था. पढ़ते-पढ़ते वह जब भी थक जाती या ऊंघने लगती तो उठकर बाहर आती और छोटे-से बने पार्क में नीम के नीचे बैठकर रोटियों को हौले-हौले कुतरते हुए खाती.

लायब्रेरी के आस-पास के लोग और वहां के माहौल में वह अभी अजनबी ही थी. वहां आने वाले अधिकतर समूह में बैठकर खाना खाते और समूह में ही चाय पीते हुए चर्चा करते. अप्रैल आते ही दिल्ली का मौसम आग उगलने लगता. दोपहर की गर्म हवा पौधे से लेकर जीव-जन्तुओं तक को झुलसाती. पार्क के जिस कोने में अपूर्वा खाना खाती वहीं बीचों-बीच एक अधखुला नल लगा था जिसमें से पानी रिसकर नीचे छोटे-से गड्ढे में भर जाता. प्यासी चिड़ियां अक्सर उस गड्ढे के चारों ओर बैठकर पानी पीतीं, थोड़ा इधर-उधर फुदकतीं, चहकतीं और किसी आहट पर फुर्र से उड़कर पेड़ पर जा चढ़तीं. कभी-कभी चिड़ियों की कोई टोली उस पानी भरे गड्ढे में डुबकियां

लगातीं. इन दृश्यों को देखकर दिमागी थकान दूर हो जाती. वैसे थकान दूर करने के लिए लायब्रेरी के बाहर पार्क के कोने में करीम चाय वाले की एक स्टोव, पतीला, दो डिब्बों और कुछ कांच के गिलास के साथ खुले आकाश के नीचे दुकान थी. अक्सर लोगों की आवाज़ व सुनती, "करीम दो बटा तीन लाना. करीम भाई चार बटा सात देना, इधर...थोड़ा जल्दी."

चहल-पहल के साथ करीम और उसके साथ काम करने वाले दो छोकरे चाय देने और खाली कांच के गिलास को ढूंढते, भागते फिरते. उन दोनों छोकरों के नाम शायद किसी को मालूम न थे. उन्हें कोई छोटू कहता तो कोई 'ऐ इधर आ' से बुलाता. राजन भी प्रायः अकेला ही खाना खाता. चाय पीता. कभी-कभी उसका एक दोस्त साथ दिख जाता. एक दिन अब अपूर्वा लायब्रेरी में बैठी पढ़ रही थी तो राजन ने उसके पास आकर धीरे से कहा, "क्या आप चाय पियेंगी ?" अकबका गयी थी अपूर्वा. उसके अकबकाने का एक कारण यह था कि वह प्रेमचन्द का 'गोदान' पढ़ रही थी और पढ़ते हुए विचारों में खोयी थी, अचानक आये प्रस्ताव को वह सुन नहीं पायी. उसे केवल राजन के होठ हिलते देखे. वह समझ गया कि वह उसे नहीं सुन पायी. उसने पुनः दोहराया था... "चाय पिओगी... ?" अपूर्वा कुछ नहीं बोली मगर उठकर लायब्रेरी से बाहर आ गयी. बाहर निकलकर राजन ने करीम से दो चाय लाने को कहा और उसकी ओर देखकर कहा, "मेरा नाम राजन है और मैं लॉ सेकेंड ईयर में हूं." कुछ पलों के लिए दोनों के बीच चुप्पी पसरी रही. "आपका क्या नाम है... ?" "अपूर्वा" "आप किस ईयर में हैं... ?" पूछा था राजन ने. "बी.ए. सेकेण्ड ईयर" बताकर अपूर्वा ने राजन की आंखों में उगते सवालों को एक निगाह देखा. करीम का एक छोकरा चाय के गिलास में आधी से थोड़ी ज्यादा भरी हुई चाय दोनों के हाथों में थमा गया. चाय पीने का उसका बिल्कुल मन न था. उस दिन दी गयी सीट के एवज में व्यावहारिकता के चलते वह चाय पीने चली आयी थी.

समय ने दोनों के सामान्य परिचय को विशेष में कब बदल डाला, दोनों ही नहीं जान पाये. समय ने सम्बन्धों को स्वाभाविक रूप से गाढ़ा किया था. अब लायब्रेरी में अपूर्वा और राजन आमने-सामने की सीट पर ही बैठते. दोनों के बीच एक लम्बी स्टडी टेबल ही तो थी. राजन जल्दी आकर पहले से निश्चित सीट को अपूर्वा के लिए रिजर्व कर लेता. वह थोड़ी देर से आ पाती थी. घर और लायब्रेरी की दूरी पच्चीस किलोमीटर की थी. इतना लम्बा फासला तय करना शुरू में तो उसे परेशान करता. कभी-कभी बसों की धक्का-मुक्की और मनचलों की फब्तियां उसके न जाने का कारण बन ही जातीं पर राजन से परिचय होने के बाद वह बिना नागा लायब्रेरी जाती. अब तो वह संडे को भी जाने लगी थी. लायब्रेरी पहुंचकर वह सबसे पहले राजन के साथ चाय पीते हुए ढेरों बातें करती... सहज रूप से घर, आस-पास के माहैल और अखबार में पढ़ी किसी खबर पर....

राजन बोलता कम और सुनता अधिक था. वह जब भी राजन से कुछ पूछती तो यही कहता, "अच्छा तुम बताओं इस पर." वह जानती थी कि राजन उसके बोलते रहने पर उसे एकटक निहारता रहता. अपूर्वा बोलते हुए राजन की आंखों में कभी-कभी तैरती हुई उदासी और चमक को पकड़ लेती. राजन की आंखें और होठ उसे बहुत सुन्दर लगते. उसने कई बार कहा भी था, "तुम्हारी आंखें बहुत सुन्दर हैं, लेकिन इनके भीतर की उदासी से डर लगता है."

सुनकर हौले से दांत निपोर टाल जाता था वह. कभी राजन बोलता, "अपूर्वा इंसान कितनी मुश्किल से जन्म लेकर बड़ा होता है, उसके बनने में क्या अकेले उसी का अधिकार है. क्या औरों का...मां-बाप, भाई-बहन या समाज का कोई उत्तरदायित्व नहीं. हम क्यों अपने जीवन पर केवल अपना अधिकार समझ खत्म कर देते हैं. पीछे क्या होगा वह हम क्यों नहीं सोचते ? क्या आत्महत्या जीवन से पलायन नहीं है ? हम क्यों जीवन से पलायन करें ? हम उन परिस्थितियों के खिलाफ लड़ते क्यों नहीं ? लड़कियों को संघर्ष करना सीखना होगा." कहते हुए वह अवसाद से भर जाता... आंखें उग आये काले धब्बों से डरावनी हो जातीं... अपूर्वा को लगता कुछ और पूछने पर आंखें बरसने लगेंगी... ऐसे में ध्यान हटाने के लिए आइसक्रीम खाने को ले जाती. उसने कई बार आंखों में मंडराये काले धब्बों का कारण पूछा था लेकिन हमेशा वह इसे टाल जाता. बाद में पता चला कि उसकी बहन के साथ रेप हुआ था. उसके बाद उसने आत्महत्या कर ली थी. अपूर्वा के बोलते रहने पर कहता, "अपूर्वा तुम बोलते हुए अच्छी लगती हो पर हमारे समाज में लड़कियों को सुनता कौन है...वह तो सिर्फ सुनाने के लिए बनी हैं." इतना पेशेंस तुम लोग लाती कहां से हो ?

सावित्रीबाई, डॉ.अम्बेडकर, रैदास, वाल्मीकि...सभी जयन्तियों पर बिना नागा राजन के एस.एम.एस. आते...बधाई के साथ किसी कार्यक्रम की सूचना भी होती.ऐसे ही एक बार एस.एम.एस. भेजने पर अपूर्वा को राजन की जाति जानने की जिज्ञासा हुई थी. पर जाति पूछने की हिम्मत तो नहीं जुटा पायी वह. एक दिन लायब्रेरी पहुंचने पर अपूर्वा ने राजन को नहीं पाया. उसका बैग वहीं था, पर वह नदारद... ऐसा पहली बार हुआ था. वह चिन्तित होकर बाहर निकल आयी. करीम चाय वाले के पास खड़े देखा था राजन को. अपूर्वा को देखकर वह उसके पास चला आया... बहुत संयम रखने के बावजूद राजन की आवाज में एक तल्खी को महसूस किया था अपूर्वा ने... राजन ने कहा था... "नागपुर की घटना मालूम चली." समझ गयी थी अपूर्वा कि, वह खैरलांजी के बारे में पूछ रहा है... "हां, कल टी.वी. पर देखा." एक गहरी उदासी और भारी मन के साथ उसने शब्द बाहर उड़ेले.

"अपूर्वा" कहकर फिर अपने को संयमित करते हुए बड़ी मुश्किल से बोला था वह. "क्या हम लोकतन्त्रा में रहते हैं... ? क्या मनुष्य सचमुच सभ्य हो गया है.... ? हरामियों ने हमारी मां-बहन के साथ रेप कर दिया. हमारे लोगों..." कहते-कहते रो पड़ा था राजन... अपूर्वा बड़ी मुश्किल से चुप करा पायी थी. फूटकर रोया था राजन. "अपूर्वा... ? मैं नहीं जानता कि तुम्हारी जाति क्या है पर मैं आज तुम्हें अपने बारे में बताना चाहता हूं..." "मैं दलित हूं"... कहकर थोड़ा रुका और एक गहरी लम्बी सांस लेकर पुनः बोला, "शायद तुम दलित का अर्थ न समझ पाओ... मैं शेडचुल्ड कास्ट हूं. वे मेरे लोग थे जिनकी चाहतों और सपनों को मसल दिया गया. उनका क्या कसूर था ? क्या इस समाज में दलितों को जीने का भी हक नहीं... कभी तो मन करता है कि आग का बदला आग....मौत का बदला

मौत हो....तभी मानेंगे ये... अब हम कमजोर नहीं हैं."....कहते हुए तमतमाने लगा था. गर्म माहौल को कुछ हल्का करना चाहा था अपूर्वा ने... ठिठकी खामोशी को धकेलते हुए अपूर्वा ने कहा, "राजन...मैं भी एस.सी. हूं." सुनकर चैंका था, रजन.और अपूर्वा ने उसके विकृत चेहरे पर एक खोमोश शान्ति को धीरे से फैलते देखा. राजन ने कुछ शान्त होकर बताया, "कल एक मीटिंग है...मैं नहीं आ पाऊंगा."

अपूर्वा को राजन के शब्द अपने कानों में गूंजते महसूस हुए थे, "आग का बदला आग...मौत का बदला मौत..." दिनभर दोनों लायब्रेरी में बैठकर पढ़ नहीं पाये थे... वे उन लोगों को नहीं जानते थे, कोई रिश्ता भी नहीं था. फिर यह अपनापा कैसा था ? क्या सभी शोषितों के बीच ऐसा ही अपनापा होता है, सोचा था अपूर्वा ने... तुरन्त ही इस पर दूसरे विचार चढ़ आये थे... "सभी शोषितों के बीच अपनापा नहीं हो सकता... जाति अपनापे में बाधा है. तब क्या शोषितों के बीच अपनापा नहीं हो सकता... जाति अपनापे में बाधा है तब क्या शोषितों के बीच ही अपनापा होगा ? हिन्दूओं ने हमारे लोगों के घर जलाये थे." उसे पिताजी के शब्द यकायक याद आये, "बेटा हम हिन्दू नहीं, बौद्ध हैं, बाबा साहेब ने ऐसा ही बताया है. हिन्दू धर्म आततायियों का है..." फिर अपूर्वा को कुछ दिन पहले हिस्ट्री के पेपर की तैयारी के दौरान हिन्दू धर्म के बारे में पढ़ते हुए अबुल फजल का कथन याद आया, "हिन्दू अनुकूल आचरण करने वाले और सबके प्रति दयालु होते हैं. उनका संसार में किसी से बैर नहीं..." अगर ऐसा है तब गोहाना में हमारे लोगों के घर क्या मुसलमानों या इसाईयों ने जलाये थे ? फिर बाबरी मस्जिद तोड़ने वाले या उड़ीसा में फादर स्टेंस को जलाने वाले कौन थे.... अपूर्वा की चेतना ने पंख फैलाने शुरू किये. पिताजी की बतायी बातें उसके अवचेतन से निकलकर सामने आती जा रही थीं.

"हम हिन्दू नहीं हैं...और जो हिन्दू नहीं वह इस देश में असुरक्षित है." लेकिन पिताजी ने यह भी बताया था कि यह देश हमारा है... हमारे पुरखे रहते हैं यहां. हिन्दू आततायियों की कोई टोली यहां चली आयी थी. हमारे पूर्वज तो अहिंसक थे और शान्ति से रहते थे. गुलाम बना लिया था हमें. फिर हमारे लोग मुस्लिम और ईसाई बन गये. सोचते-सोचते उलझती गयी थी अपूर्वा... अचानक एक विचार कौंधा, तो क्या इसलिए मुसलमानों, दलित और ईसाईयों को बारी-बारी से जलाया जाता है ? उसे लगा जैसे उसने अन्याय की जड़ों को पहचान लिया. तब तो भारत में मुस्लिम और ईसाई अपने ही हैं...हमारे अपने पूर्वज, मन ही मन बुदबुदायी. तो क्या हम अपने देश में भी असुरक्षित हैं ? वह सोचकर सिहर उठी थी. उसे बुद्ध के विचार याद आये, "जो हिंसा में विश्वास रखते हैं, मानवता के दुश्मन हैं..."

अगले दिन वह भी लायब्रेरी नहीं जा पायी...उसका मन नहीं हुआ था. उन अनजाने अपने लोगों के दुख से व दुखी थी. दूसरे दिन सवेरे अपूर्वा जल्दी ही लायब्रेरी पहुंच गयी. आज उसने राजन के लिए सीट आरक्षित की थी और ऐसा पहली बार हुआ था. सीट पर बैठकर हिन्दी साहित्य की किताब निकालकर पढ़ने लगी. भक्तिकाल का सन्त साहित्य उसे अधिक भाता. वहां उसे अपनापा लगता और जहां अपनापन लगता है इंसान वहीं सहज होता है. अपूर्वा भी राजन के साथ अब अधिक सहज हो गयी थी. उसने राजन के प्रति अपने मन को मुक्त कर दिया था. उसे अब राजन पर प्यार आता था. उसमें वह अपने को तलाशती. अपूर्वा ने राजन को लायब्रेरी में घुसते हुए देखा. हाथ के इशारे से उसने राजन को सीट के बारे में बताया. फिर उठकर राजन के साथ बाहर चली आयी. उसने राजन के चेहरे पर उदासी देखी थी. वह तनाव में था, लेकिन शान्त था. आंखें लाल पथरायी हुई-सी जान पड़ीं... आंखों से नमी का निकलकर पथरा जाना बहुत ही भयावह होते जाने का संकेत है. उसके चेहरे की शान्ति भीतर के भूचाल को बता रही थी. चाय का ऑर्डर दे शुरुआत अपूर्वा ने ही की थी, "कैसा रहा कल ?" चेहरे पर तेजी के साथ चढ़ते-उतरते भावों को देखा था... तमतमा उठा वह... पूरे गांव में नंगा घुमाकर रेप किया था. "हमदर्दी के नाम पर लोग नेतागीरी करने पहुंच रहे हैं... हमारे लोग रो रहे हैं, हमारी समृद्धि बर्दाश्त नहीं कर पाये...वो..." लाख संयम रखने के बावजूद सहज नहीं हो पाया था, "सवर्णों की तरह क्या ओ.बी.सी. से भी अब हमें लड़ना होगा ? पूरे देश में कभी यादव, कभी जाट और गुर्जर हमें मार रहे हैं ? जिन्हें ब्राह्मणवाद से लड़ने के लिए हमारे साथ आना था. वही अन्याय करने का आमादा हैं....अब हमें सोचना होगा." कुछ दिन बहुत ही बेचैन और परेशान रहा था राजन. बड़ी मुश्किल से उसे सहज कर पायी थी अपूर्वा. राजन किसी संगठन के कार्यक्रमों में हिस्सेदारी करता... वह अपूर्वा को भी चलने को कहता. कभी वह टाल जाती तो कभी ज्यादा मनौब्बल करने पर चली भी जाति. सच तो यह था कि राजन जब भी मनौब्बल करता उसे बहुत अच्छा लगता.

सितम्बर के पहले सप्ताह का अन्तिम दिन था. पिछले तीन दिनों से बारिश के कारण अपूर्वा लायब्रेरी नहीं जा पायी थी. जाती भी तो कैसे, पिताजी घर पर मानुषी और विवेक के साथ छुट्टी किये बैठे थे. खाने के शौकीन पिताजी ने कभी पकौड़े, कभी कचैरी और कभी परांठे की फरमाइशों से घर के रूटीन को उलट डाला था. बहुत दिनों के बाद बाहर की भागमभाग से घर का माहौल खुशगवार हुआ था. तीन दिनों तक तला हुआ खाने से अब उसे देखते ही उबकाई आती थी. पूरे घर में तेल की महक अब भी तैर रही थी. अपूर्वा बाहर निकलना चाहती. वैसे भी तीन दिन तक राजन से न मिलने पर वह बेचैन हो उठी. जैसे ही चैथे दिन आकाश थोड़ा खुला वह जल्दी तैयार होकर घर से निकल गयी. उसे डर था कि कहीं हल्की-सी बारिश शुरू हुई नहीं कि उसका निकलना आज भी मुश्किल हो जायेगा. बारिश से मौसम तो खुशनुमा हो गया, पर जमीन पर चलना दूभर. बड़ी मुश्किल से पांव जमाते हुए वह बस स्टैंड तक आयी थी. प्रायः यह पौने नौ की ही बस लेती, लेकिन आज वह आठ बजे ही स्टैंड पर पहुंच गयी थी. उसे ज्यादा इन्तज़ार नहीं करना पड़ा. उसने जल्दी ही बस में चढ़कर सीट ली और राजन की स्मृतियों से जुड़ती चली गयी.

यूनिवर्सिटी का नाम सुनकर वह झटके से ख्यालों से निकली और जल्दी से बस से उतर गयी. वह पंख लगा उड़कर लायब्रेरी पहुंचना चाहती थी. यह जानती थी कि राजन दस बजे से पहले लायब्रेरी नहीं आयेगा और उसमें अभी आधा घण्टा बचा है. पर चाहतों पर किसका बस... उसने सोचा... 'क्या पता राजन आज जल्दी आ गया हो...'

अपूर्वा के लायब्रेरी पहुंचने के बीच मिनट बाद आया था राजन. इस दरम्यान किताब खोले हुए कनखियों से न जाने कितनी बार आंखें बाहर दरवाजे का मुआयना कर चुकी थीं. राजन को देखने ही अपूर्वा की हार्टबीट बढ़ गयी. रामांचित होते हुए भी उसने मनोवेगों को काबू कर लिया था, जबकि राजन ने लायब्रेरी में बैठे अन्य लोगों का ध्यान रखते हुए हौले से शिकायती लहजे में कहा था, "तीन दिन के बाद आज बादलों से चांद कैसे निकल आया है... ?" कुछ बोल नहीं पायी थी अपूर्वा... वह उठकर लायब्रेरी से बाहर निकल आयी. करीम को चाय के लिए बोलकर कहा, "कैसे आती... ? तीनों दिन पिताजी, भानु और विवेक घर पर थे... तुम लड़कों को क्या डर.. ? जब चाहो मुंह उठाकर बिना कहे निकल जाओ...कौन पूछता है तुम्हें..." राजन समझ गया कि अपूर्वा नाराज हो गयी है. उसने बनावटी शिकायत का झीना पर्दा डाले हुए ही कहा, "ऐसा पहली बार हुआ है कि मेरा बैग लायब्रेरी में था और मैं बाहर. क्या करता तुम्हें देखे बिना कहां सुकून... ?" "बस रहने दो ज्यादा डायलॉग नहीं." कहा था अपूर्वा ने. झेंपते हुए राजन ने कहा, "क्यों न आज कहीं घूमने चलें ? जहां तीन दिन नहीं पढ़े, वहां एक दिना और सही." सुनकर कुछ देर चुप रही थी अपूर्वा. राजन दोबारा पूछने की हिम्मत जुटा ही रहा था कि अपूर्वा ने कहा, "चलो...पर कहां ?" "तुम बैग तो उठाओ...चलते-चलते सोच लेते हैं." और सचमुच बस स्टैंड तक आते-आते सोच लिया था राजन ने. बस लेकर दोनों पुराना किला पहुंचे. अपूर्वा ने झील में भरा हुआ पानी देखकर मचलते हुए कहा था, "राजन, आओ बोटिंग करते हैं." आज अपूर्वा को आकाश पहले से नीला दिखा था, रोमानी नीला. पानी का रंग भी तो आज नीला था. कहीं यह उसकी आंखों का दोष तो नहीं. सोचा था उसने. बोट में बैठते हुए पानी के तल में भी नीलाई को महसूस किया था. उसने राजन से पूछा, "आज मुझे सब कुछ नीला क्यों लग रहा है ?" "यह हमारी मुक्त चाहतों और सपनों का रंग है..." कहा था राजन ने.

"क्या खैरलांजी के लोगों की चाहतों का रंग भी नीला था, हमारी चाहतों जैसा ?" अपूर्वा ने फिर पूछा था...अपूर्वा ने राजन को विचारों की गहराई में डुबकियां लगाते हुए जाते देखा. वह समझ गयी कि उसने राजन के भावुक घावों को कुरेद डाला है. उसने बोट में राजन की बगल में बैठते हुए उसका हाथ अपनी दोनों हथेलियों के बीच में रख अपनी दाहिनी हथेली से सहलाकर राजन की आंखों में झांकते हुए पूछा था, "राजन इन बातों का क्या भावुक होने से कोई सोल्यूशन निकल आएगा ? भावुकता हमारी ऊर्जा को सोख लेती है. हमें संयत होकर सोचना होगा. ठण्डा लोहा ही गर्म होले को काटता है... भावुकता गर्म हवा का झोंका ही तो है जो झुलसाता है, परेशान करता है." वह अपनी रौ में न जाने क्या-क्या बोलती गयी.कहते-कहते एकटक अपने को निहारते अपूर्वा रुक गयी थी. राजन की आंखों में शरारत के बादलों को घुमड़ते हुए पाया था, उसने बेचैनी को पढ़ लिया. राजन ने उसके हाथ को अपने हाथ में लेते हुए उसकी गरमाहट और संवेदना को महसूस किया.

दोनों आज पहले से कहीं अधिक करीब हो चले थे. पहली बार दोनों घूमने निकले थे. पहली बार आदर्शों की घटाओं से निकलकर सहज मानवीय जमीन पर उतरते थे. क्या आदर्श हमारे मानवीय होने में बाधा है ? बेहतर होने की चाह हमारी मानवीय इच्छाओं को ढांप लेती है. अनेक प्रश्न कौंधते और सोल्यूशन के रूप में जवाब भी साथ ही तैरते आते. राजन ने पूछा था, "क्या इन पलों को हम परमानेंट नहीं बना सकते ?" सुनकर अपूर्वा ने अपने को बोट के एक कोने में समेटा और अपने दायें हाथ को पानी में उतार दिया था. उसने पानी के भीतर ही अपनी हथेलियों को खोल दिया. पानी उसकी उंगलियों के बीच से निकल रहा था. उसने हथेलियों को बन्द करके पानी को उसमें कैद करना चाहा था. उसे लगा कि उसके भीतर बैठी चिड़िया उड़ना चाहती है, दूर असीम...मुक्त नीले आकाश में. चिड़ियां चहचहाने लगी हैं. होठों को बुदबुदाते हुए महसूस किया था. अपूर्वा ने बी.ए. थर्ड ईयर पास करके एस.एस.सी. की परीक्षा दी थी. आज उसी का रिजल्ट आना था. शाम होते-होते उसने जान लिया कि वह एस.एस.सी. की परीक्षा में पास हो गयी. उसने राजन को लैंडलाइन फोन पर इसके बारे में अति हर्ष के साथ बताया. उसने यह भी बताया था कि कुछ दिनों तक वह लायब्रेरी नहीं आ पाएगी. उदासी को राजन की आवाज में पकड़ लिया था अपूर्वा ने. "कुछ ही दिनों की तो बात हैं, फिर...हो सकता है कि..." कहकर शरारत करते हुए चुप हो गयी थी अपूर्वा.

"फिर...हो सकता है कि..." बेचैनी से पूछा था राजन ने, "....हो सकता है कि मुलाकात के पल स्थायी हो जायें..." कहकर अपूर्वा ने उधर से राजन की तेज सांसों को सुना था. वह कुछ दिनों तक नौकरी की औपचारिकताओं को पूरा करने में लगी रही. उसे नियुक्ति पत्रा भी मिल गया. उसकी नियुक्ति बाल कल्याण मन्त्रालय में हुई थी.

इसी बीच अपूर्वा ने राजन के साथ सम्बन्ध को एक आकार देने के लिए मां से बात की. बात तो पिताजी से वह सीधे भी कर सकती थी, पर अपने बारे में, वह भी अपनी ही शादी की बात. इसीलिए उसने राजन के बारे में मां को सब कुछ बता दिया था. सुनकर मां चैंक गयी थी. उसे एकबारगी तो विश्वास ही नहीं हुआ था. दिनभर मां चुप रही थी... अपूर्वा मां के स्वभाव को जानती थी. मां का चुप हो जाना उनके अशान्त और बेचैन मन का संकेत था. किसी बात पर सहमत न होने पर भी वह चुप हो जाती थी. लाख कोशिशें करो पर मज़ाल है कि कोई उन्हें बुलवा पाये. अपूर्वा ने मां को राजन के बारे में बता तो दिया था, पर अब वह पछता रही थी, "क्या जरूरज थी मां को बताने की. पिताजी से डायरेक्ट भी तो कहा जा सकता था. ऐसा न हो कि मां के संस्कार.... लेकिन मां ऐसा क्यों करेगी ? क्या दुनिया की कोई भी मां अपने ही आंचल की खुशियों का गला दबायेगी." ऐसे अनेकों विचार अपूर्वा के मन में चहलकदमी करते डरा रहे थे.

मां का परिवार दिल्ली के करोलबाग में ही रहता था. दसवीं में फेल होकर मां ने जब आगे न पढ़ने की घोषणा की थी तब किसी ने दबाव भी नहीं डाला था, आगे पढ़ने का. लड़कियों को दबाव देकर पढ़ाता भी कौन है ? वह तो पिताजी... मां देखने में जितनी सुन्दर थी, उतनी ही व्यावहारिक भी. करोलबाग के आंगन रेस्तरां का रास्ता मां ने ही तो दिखाया था पिताजी को. मां बताती थी, "तू जब मेरे पेट में थी तो हर हफ्ते खाने जाते थे वहां." मां गोरी थी, नानी जैसी. लेकिन कद नाना जैसा लम्बा. अपूर्वा ने भी मां की तरह कद काठी

पायी थी, पर रंग में पिताजी जैसी तांबई थी.

शाम घिरते ही अपूर्वा की बेचैनी बढ़ गयी थी. वह अपने कमरे में बैठी पत्रिका के पन्ने उलट रही थी. नौकरी ज्वाइन करने के बाद आज उसकी पहली छुट्टी थी. फिर से मां को पिताजी से बात करने को कहने की उसकी हिम्मत नहीं हुई. पिताजी दूसरे कमरे में मामाजी के साथ किसी गम्भीर बातचीत में मग्न थे. वैसे मामाजी घर पर कम ही आते थे. बिजनेस के सिलसिले में उन्हें अधिकतर दिल्ली से बाहर ही रहना पड़ता. फलों के थोक व्यापारी थे वे. प्रत्येक सीजन फल के लिए कभी नागपुर, कभी यू.पी, कभी शिमला जाकर फलों को पसन्द करते, पेशगी देते और वापिस चले आते. वहां से व्यापारी ट्रकों में माल लादकर आज़ादपुर मंडी में भेजते, जहां पर मामाजी उन्हें बेच देते. वे जब भी घर आते थे, ढेरों सीजनी फल लाते. कभी लीची की पेटियां तो कभी सन्तरे, अनानास या आम. सेब और अंगूर मानुषी को बहुत अच्छे लगते तो अपूर्वा को सन्तरे और आम. विवेक सभी फलों को खा लेता. मामाजी चार महीने बाद घर आये थे. जून में जब आये थे तो आम और खरबूजे लाये थे. हफ्ते भर सब उन्हें खाते रहे थे... अब की वे सेब और अंगूर लाये थे. पिताजी और मामाजी में खूब छनती थी. बिजनेसमेन होते हुए भी मामाजी सामाजिक कार्यों में रुचि लेते. वैसे भी करोलबाग जहां वे रहते, दिल्ली की दलित राजनीति और गतिविधियों का केन्द्र माना जाता. सभी दलित जातियां वहां थीं. लेकिन सभी अपनी-अपनी उपजातियों के खोल में सिमटी, दलित आन्दोलन चलाती हुई. अपूर्वा की नौकरी लगने के बाद मामाजी का यह पहला आगमन था. वे आकर सबसे पहले बच्चों से ही मिलते थे.

अपूर्वा ने मां को पिताजी और मामाजी के पास भीतर जाते हुए देखा था. घंटा भर होने को आया, लेकिन बाहर नहीं आयी. उसने कभी भी भीतर होती बातों पर ध्यान नहीं दिया था. आज वह आंखें और कान दरवाजे पर ही गड़ाये थी. वह आज सब कुछ सुनना चाहती थी. आज की चर्चा का विषय अपूर्वा ही थी. अपने बारे में जानने की चाहत इंसान के धैर्य को क्षीण कर देती है. समय एक भार जैसा लगा था उसे. उस भार को परे ढकेलना अपूर्वा के बस से बाहर था. कभी उसे कमरे में एकदम शान्ति सुनाई देती तो कभी मामाजी और पिताजी की तेज आवाजें. अपूर्वा ने मां को कमरे से बाहर निकलकर आते देखा. मां का चेहरा तनाव में खिंचा हुआ दिखाई दिया था, "तुम्हारे पिताजी बुलाते हैं." उन्होंने हल्के रुंधे गले से कहा. खराब समय की आशंका ने अपूर्वा की धड़कनों की रफ्तार को बढ़ा दिया, चाहतें डूबने लगी थी. कुर्सी से खड़ा होने में पूरी ताकत लगानी पड़ी थी उसे. क्या होगा...? सोचा था उसने. कमरे में घुसते हुए मामाजी को दायीं तरफ खिड़की के पास सोफे पर बैठे पाया और पिताजी ठीक उनके सामने थे. उनके पीछे की दीवार पर बुद्ध और अम्बेडकर की बड़ी-सी तस्वीर लगी थी. बीच टेबल पर दो खाली चाय के कप रखे थे, जिनके भीतर चाय के सूखने पर हल्के पीले धब्बे उसने देखे थे. अपूर्वा पहली बार पिताजी का सामना करने में घबरायी थी. आज उसके जीवन का फैसला था. तब क्या पिताजी और मामाजी आज जज बन गये थे....क्या मां भी उनके साथ शामिल हैं? सोचा था उसने. इंसान अपने भविष्य का फैसला खुद क्यों नहीं कर सकता...? वह सोचते हुए खाली कुर्सी पर धंसती चली गयी थी. मां अभी खड़ी थी. "तुम भी बैठ क्यों नहीं जाती..." रूखी आवाज में कहा था पिताजी ने. अपूर्वा के भीतर की चिड़िया ने सहमकर पंखों को समट लिया था. गहरी अवसाद भरी खामोशी पिताजी ने ही तोड़ी, "अपूर्वा तुम्हारी मम्मी ने बताया था." सर्द लहजे में कहकर चुप हो गये थे. ऐसा लगा जैसे बाकी शब्द गले में अटककर रह गये हों, "किसी लड़के का जिक्र किया था." कहकर जैसे जोर लगा मुंह से बाहर शब्दों को थूका. उसने पिताजी की ऐसी आवाज पहले कभी नहीं सुनी. बात फिर से ठहर गयी थी. मामाजी ने ठहराव को तोड़ा था, "अपूर्वा...देखो लड़का है तो अपना ही...लेकिन हमारा समाज इसके लिए अभी तैयार नहीं होगा. हम मान भी लें....लेकिन आगे मानुषी...क्या होगा उसका? तुम्हारी तो शादी, चलो हो जाएगी. समाज की नाराज़गी को हम झेल लेंगे... मामला सिर्फ यहीं तक का तो नहीं." कहकर मामाजी चुप हो गये थे. अपूर्वा ने नज़रें उठाकर पिताजी को देखा था. वे गर्दन झुकाये बैठे थे. अपूर्वा उनकी आंखों में देखना चाहती थी. क्या यही विचार पिताजी के भी हैं...? उसे विश्वास नहीं हो पाया था. सपनों और चाहतों को उगाने वाले पिताजी इतने संस्कारधर्मी और भीरु कब से हो गये. उसे मां की आंखों में झांककर देखने की इच्छा हुई थी. मां को कातर निगाहों से अपनी ओर ही देखते पाया था उसने. तो क्या मां भी शामिल थी बेटी के पंख कतरने में. मां खामोश थी, हमेशा की तरह असहमति में या नाराज़गी में. पर आज तो उन्हें बोलना चाहिए, सोचकर अपूर्वा ने याचक के रूप में आंखों से अपनी चाहतों का दामन मां के सामने फैलाया. अपूर्वा को अपनी ओर देखते हुए मां ने पिताजी की ओर देखा. खामोशी बहका न दे, यह सोचकर मामाजी ने अपूर्वा से कहा, "यह मत सोचना अपूर्वा कि हम तुम्हारी खुशियां नहीं चाहते. हमसे बढ़कर बच्चें की खुशियां कौन चाहेगा...? अगर मामला सिर्फ तुम्हारी खुशियों तक सीमित रहता तो कोई बात नहीं थी लेकिन आंच तो हमारे घरों तक भी आयेगी. अगर दीदी और जीजाजी मान जाते हैं तो तुम्हारे नाना-नानी और हम तो शादी में शामिल नहीं होंगे.... हमें अपने बच्चों के बारे में भी तो सोचना है." कहकर ढीले होते शिकंजे को उन्होंने कसने की कोशिश की थी. मामाजी को डर था कहीं पिताजी राजी न हो जायें. "नहीं होते हैं तो न हों नाना-नानी और मामा-मामी शामिल....कौन-सी आफत आ जायेगी." मौन चीत्कार भीतर गूंजा था अपूर्वा के, "रही बात मानुषी की तो वह भी पढ़कर आत्मनिर्भर होकर अपने लिए चुनाव खुद ही कर लेगी." मामाजी फिर बोले, "देखो अपूर्वा! कहने को तो सभी दलित एक ही हैं, लेकिन जो लड़का तुमने पसन्द किया है वह जाटव है और हम चमार... हालांकि ब्याह-बेटी के सम्बन्ध जाटवों ने ही हमसे खत्म किये हैं. अब अगर हमारी लड़की जाटवों के यहां ब्याही जाएगी तो क्या इसमें हमारी नाक नीचे नहीं होगी. समाज में जाति न हो तब इसे मानना पागलपन है, लेकिन जब सारे काम जाति देखकर ही होते हैं. तो..." अपूर्वा के लिए दलितों के भीतर जाटव और चमार का झमेला एकदम नया था. हां, चमार-चूहड़े, धानक, खटीक, डोम, पासी, महार और बंजारे आदि दलितों की उपजातियां उसे मालूम थीं. 'इन्हीं के बीच तो एकता की बात बाबा साहेब ने की थी.' पिताजी बचपन से यही सब तो बताते आये थे. अपूर्वा ने कभी नहीं सोचा था कि चमार और जाटव का झगड़ा सबसे पहले उसके सपनों को ही खा जायेगा. उसने राजन से कभी नहीं पूछा था उसकी उपजाति के बारे में. वह तो संयोग से एस.एस.सी. का फार्म भरते समय कास्ट सर्टिफिकेट की जीरॉक्स कॉपी करते हुए राजन की नजर उपजाति वाले कॉलम पर पड़ी थी, "अच्छा तो तुम चमार हो और हम जाटव

हैं." कहा था राजन ने. पर अपूर्वा के लिए तो सभी दलित एक ही हैं. यही सब तो उसने बचपन से सीखा है. आज पिताजी का यह दोहरा व्यवहार क्यों ? पिताजी कुछ बोलते क्यों नहीं...वह मामाजी को डांट क्यों नहीं देते. लगता है अपूर्वा के खिलाफ षडयन्त्रा रचा जा चुका है. इसके सूत्राधार मामाजी ही लगे थे. 'शिक्षा हमें सही, गलत में चयन का विवेक देती है...हमारी ऊर्जा को दोगुना कर देती है...' उसे बचपन में सिखाये गये पिताजी के ये वाक्य स्मृति से बाहर निकलकर गूंजते दिखे थे... यह क्या हो गया आज पिताजी को...इतने रेडिकल.....लेकिन आज, आज वे अन्य पिताओं जैसे संस्कारी और जातिबद्ध हो गये थे... समाज को सामाजिक बीमारियों के बारे में बताने वाले पिताजी आज खुद कैसे सामाजिक व्याधियों से घिरे थे... उसे पूरी दुनिया खोखली नज़र आयी थी...बाहर विचारों से हष्ट-पुष्ट दुनिया संस्कारों में कितनी पुरातन है. तो क्या पिताजी की सोच अभी भी पुरातन है ? वे क्या सिर्फ कहने में रेडिकल हैं ? उसे पूरी दुनिया संस्कारी लगी थी. ऐसे में समाज कैसे बदलेगा, उसने सोचा.

दोहरे व्यक्तित्व में जीते हैं हम... निर्णायक पल ही हमारे विचारों की असली कसौटी हैं ? क्या सही है और क्या गलत यह विचार नहीं, बल्कि सामाजिक संस्कार ही तय करते हैं. अपूर्वा ने पिताजी को देखते हुए कहा, "पिताजी क्या आज भी यही चाहते हैं ?" उसे मामाजी की आवाज फिर सुनाई दी थी, "जीजाजी आप ही बता क्यों नहीं देते सब कुछ." पिताजी ने चेहरा ऊपर उठाकर सख्त होने की कोशिश की. बहुत मेहनत करनी पड़ी थी उन्हें इसके लिए... "अपूर्वा, तुम्हारे मामाजी ठीक कहते हैं...अभी हमारा समाज तैयार नहीं है. भले ही हम कितने प्रगतिशील हो जायें...लेकिन रहना तो हमें अपनी जात में ही है. हमें जाति तोड़नी होगी, लेकिन अभी थोड़ा वक्त लगेगा. बाकि तुम्हारी मर्जी है. मैं तुम्हें रोक नहीं रहा लेकिन..." कहकर चुप हो गये थे.

उसे आज पिताजी ऐसे कसाई लगे थे जिसने अपने घर में ही किसी मेमने को प्यार से पाला हो और अन्त में खुद ही उसकी गर्दन को दबोच लिया हो. अब मां ही बची थी जो पिताजी को मना सकती थी, लेकिन वह तो खामोश थी...दुनिया की सभी औरतों ने खामोशी का वरण क्यों किया ? औरतें कब खामोशी को तोड़ेंगी ? अपूर्वा ने मां की पलकों के कोरों से आंसुओं को ढुलकते हुए देखा.

"अपूर्वा हमारी सोच असली जीवन से आगे की होती है. हम सोचते हैं आदर्श लेकिन हमें सच का दामन कभी नहीं छोड़ना चाहिए. जीवन का सच आदर्श से कहीं अधिक क्रूर है. हम केवल अपने बारे में ही तो नहीं सोच सकते. शिक्षा हमारे निजत्व का ही विकास नहीं करती, बल्कि वह हमें सामाजिक और पारिवारिक जिम्मेदारियों को भी उठाना सिखाती है. अगर तुम परिवार और भाई-बहनों की चाहतों की बलि देकर व्यक्तिगत जीवन को बेहतर करना चाहो तो करो, पर मैं तुम्हें इसकी इजाजत हरगिज नहीं दूंगा." कहकर पिताजी कमरे से बाहर निकल गये थे. मामाजी ने एक ठण्डी लम्बी सांस ली थी. उनके भीतर कुछ अटका हुआ था, जो अब धीरे-धीरे सामान्य हो चला था. लेकिन मां का रो-रोकर बुरा हाल था. मामाजी बहुत देर तक कमरे में खामोश बैठे रहे थे... उनके संस्कार जीते थे...पर रिश्ते के ताप और आदर्शों को कमजोर करके. धीरे से बिना कुछ बोले वे उठकर चले गये.मां को अकेली छोड़ अपूर्वा अपने कमरे में चली आयी थी.

अपूर्वा ने होश संभालने के बाद पहली बार इतना भार मन और दिमाग पर महसूस किया था. जब भी वह परेशान होती या कहीं उलझ जाती तो तुरन्त पिताजी के पास चली जाती थी, समझने या समाधान के लिए. लेकिन आज...अब वह कहां जाए, सुलझाने वाले ने ही तो उलझाव पैदा किया है. रोती रही थी अपूर्वा रात भर. चिड़ियों के चहचहाने ने अंधेरे के जाने और उजाले के आने की सूचना दी थी. सुबह को रोशनी से महसूस किया था उसने. लेकिन यह सब बनावटी लगा था उसे. उसके भीतर घिर आये अंधेरे को यह उजाला रोशन नहीं कर सकता था. उसे यह सुबह अपनी नहीं लगी थी. तो क्या स्त्राी की सुबह और उजाले अलग-अलग होते हैं ? वे राजन को क्या जवाब देगी, क्या उसे मना कर दे ? क्या वह घर से चली जाये, क्या वह झुककर सब कुछ मान ले ? सबके जीवन की छद्म खुशियों और परिवार को बचाने के लिए क्या वह अपनी चाहतों को बदरंग बना दे. मां ने आकर आंखें बन्द किये जागती अपूर्वा को जगाने के लिए पुकारा था. उसने अधखुली पलकों से मां को देखा. सिरहाने बैठकर मां ने उसके बालों को हाथों से सहलाते हुए कहां, "उठ जा बेटी...मैं जानती हूं कि यह गलत है...लेकिन हमारी किस्मत में केवल निर्णयों को मानना लिखा है. हमें अपना निर्णय कहां लेने देता है समाज. कहीं भी चले जाओ सभी पुरुष एक-से होते हैं." अपूर्वा ने अपनी आंखों के कोरों से गर्म बूंदों को गालों से फिसलते महसूस किया. वह मां के सीने से लग फफक पड़ी. मां-बेटी की रुलाईयों से कमरा भी एक बारगी दहलने लगा था.

अपूर्वा ने हफ़्ते भर राजन से कोई बात नहीं की. कितनी बार उसका फोन ऑफिस में और घर के फोन पर आया था. न होने का उदास बहाना कहलवाया था उसने. वह जानती थी कि राजन का सामना वह नहीं कर पायेगी. घर में पिताजी उसका सामना करने से बचते रहते. ऑफिस से आकर वह अपने कमरे में चली जाती और कोई किताब या पत्रिका लेकर उसके पन्ने पलटते सोचती जाती. उसने मौन प्रतिरोध करने का फैसला किया था. वह जानती थी यह गलत है, पर वह इसे तय कर चुकी थी.

एक दिन सुबह ऑफिस जाते हुए उसने अपनी पूरी ऊर्जा को इकट्ठा करके आवेगों को संयमित कर राजन को फोन किया था, "हैलो...हां राजन, मैं अपूर्वा ! कैसे हो ?" राजन के लिए यह अप्रत्याशित था, "हैलो...अपूर्वा, कहां चली गयी थी तुम ? न कोई फोन... न... क्या हो गया ? तुम्हें मैंने कितनी बार फोन किया....कितना परेशान रहा मैं ?" ढेरों सवाल राजन दनादन बेचैनी के साथ उड़ेलता गया था. सुनकर अपनी आवेगी सांसों को संयमित करते हुए अपूर्वा ने कहा था, "राजन, मैं अब मिल नहीं पाऊंगी तुमसे...हमें अब.." "लेकिन क्यो ?" अपूर्वा की बात को बीच से चीरते हुए कहा था राजन ने. आगे कहने लगा, "अपूर्वा क्या बात है ? क्या हम एक बार मिल नहीं सकते...प्लीज." राजन की आवाज में याचना को महसूस किया था अपूर्वा ने. बोली, "ठीक है, लंच के बाद मैं आज हाफ लिव ले लूंगी. कॉफी हाऊस में मिलते हैं." कहकर अपूर्वा ने सख्त होने की कोशिश की, लेकिन उसकी आंखों में गर्म पानी भर आया था.

"आखिर राजन की क्या गलती है ? क्यों उसके सपनों को मार रही है ?" वह सोच रही थी. ऑफिस पहुंचने के लिए अपूर्वा ने मेट्रो ली. उसे मेट्रो में सीट मिल गयी थी. मेट्रो ठीक उसके ऑफिस के पास से गुजरते हुए आगे बढ़ जाती थी. इंडिया गेट से एक स्टॉप पहले पड़ता था उसका ऑफिस. विचारों में खोयी अपूर्वा ने उद्घोषणा सुनी. 'अगला स्टेशन राजीव चैक....द नेक्स्ट स्टेशन इज राजीव चैक.' वह मेट्रो से उतरकर ऑफिस पहुंची.

अपूर्वा ऑफिस में कोई काम नहीं कर पायी थी. पिताजी द्वारा बताये ढेरों उदाहरण उसे याद आ रहे थे, "बेटा, अब दलित एक हो रहे हैं. वे आपस में शादी-ब्याह करने लगे हैं. देखो, जो रीयल अम्बेडकरवादी हैं, बौद्धिष्ट हैं वे विचारों को जीवन में उतार रहे हैं. बहुत से चमार समुदाय के लोगों ने वाल्मीकि, खटीक या फिर धानकों से शादी की है. वाल्मीकि समुदाय के पढ़े-लिखे लोगों ने उपजातियों के बन्धन को तोड़ा है." पिताजी ऐसे ढेरों उदाहरण उन्हें बताते. लेकिन उसे शब्द याद आता 'रीयल अम्बेकरवादी' तो क्या पिताजी रीयल अम्बेडकरवादी नहीं हैं ? मामाजी के घर जब भी वह जाती थी तो उनकी बेटी आशिमा उसे बताती, "दीदी पड़ोस में रहने वाली सरोज ने धानकों के लड़के से शादी कर ली, कोई झगड़ा नहीं हुआ." कभी कहती, "अपूर्वा दीदी पता है मेरे मामाजी के लड़के ने वाल्मीकि लड़की से शादी की थी. हम भी गये थे वहां...बड़ा मजा आया था..." ऐसी शादियां करने वाले ही क्या रीयल अम्बेडकरवादी हैं ? क्या कभी जाति हमारे समाज से खत्म हो पायेगी... ? उसने ऑफिस से आधे दिन की छुट्टी ली और भारी कदमों से कॉफी हाऊस. ऑफिस से ज्यादा दूर नहीं था कॉफी हाऊस. उसने पैदल चलकर पहुंचना ही मुनासिब समझा. कॉफी हाऊस में भीड़-भाड़ ज्यादा थी. दोपहर को आस-पास सरकारी एवं प्राइवेट ऑफिसों से घिरे कॉफी हाऊस में लोग लंच करने चले आते. एक तो यहां लम्बे समय तक बैठने का पूरा मौका रहता, दूसरा पॉकेट की रेंज के कारण एक खुशनुमा बड़े होने का अहसास भी. मन में फूटती कोंपल लिये युवक-युवतियां भी बेधड़क आते थे. यहां उन्हें एकान्त भले ही न मिले लेकिन किसी कोने की सीट तलाश वे एकान्त बना ही लेते. यहां पत्राकारों, लेखकों और बहुत से व्यावसायिक या सामाजिक संगठनों की गोष्ठियां भी खूब होतीं. कॉफी की प्यालियों में बहुत-सी चाहतें और सपने परवान चढ़ते. क्रान्ति की घोषणाएं कॉफी की चुस्कियों के साथ जज्ब होतीं. विचारों के साथ खेलने का अड्डा भी था यह. साउथ इण्डियन खाना खाने वालों की भी यहां भरमार होती. लाल और नीले रंग की कुर्सियां, पेप्सी और कोक वाले अपने प्रचार के लिए मुफ्त में दे जाते, जिन पर लोग लम्बे समय तक धंसे रहते. कॉफी हाऊस में घुसते ही कॉर्नर में बैठा दिखा था राजन. अपूर्वा ने धड़कनों की बढ़ी रफ्तार को पूरी ऊर्जा के साथ ब्रेक लगाकर धीरे किया था. राजन की आंखे हमेशा की तरह उदास थीं और चेहरा शान्त. 'चेहरे पर किसी भाव का न होना क्या भावशून्य हो जाना है ?' तुरन्त ही दूसरा विचार पहले वाली पर चढ़ आया. इंसान चेतना खोकर भी भाव शून्य होता है तो क्या राजन चेतना खो बैठा. सोचकर थरथरायी थी वह.

"हैलो राजन, हाउ आर यू ?" अन्तरंगता को औपचारिकता में लपेटकर उसने कहा. "हैलो." संयत हो पूछा था राजन ने, "कॉफी लोगी या ठण्डा ?" "कॉफी लूंगी." राजन दो कॉफी ट्रे में लिये चला आया. कुछ इधर-उधर की बातचीत करते औपचारिक हुए रिश्ते को सामान्य करने की कोशिश की. बात अपूर्वा ने ही शुरू की, "राजन हमारे अलग-अलग उपजाति से होने के कारण, पिताजी और मामाजी ने हमारी शादी के लिए एकदम से मना कर दिया है. हकीकत की जमीन पर कांटें उगे हैं. हमारे अपने रेडिकल लोग भी उन कांटों को खाद-पानी दे रहे हैं. मुझे माफ कर देना राजन, मेरे सपने तो खैर कोई बात नहीं, लेकिन तुम्हारे सपनों को तोड़ने की मैं ही अपराधिनी हूं. लड़कियों के सपने की क्या कीमत है यहां ? जाति तोड़नी है बस इन्हें. खुद मुक्त होना है. दलित औरतों को गुलाम बनाकर ही रखना है. एक गुलाम दूसरे गुलाम की मदद क्यों नहीं करता ? दलित पुरुष तो मुक्त हो ही जायेंगे एक दिन, लेकिन हम दलित औरतों की गुलामी का क्या ? बाबा साहेब ने कहा था, वे हिन्दू जात में पैदा हुए हैं, हिन्दू जाति में मरेंगे नहीं. लेकिन हम औरतें कहां जायें ? जहां देखो वहीं..." कहकर डबडबाई आंखों को साफ किया उसने.

राजन खामोश था जैसे हमेशा की तरह कह रहा हो, "अच्छा तुम बताओ इस पर." खामोशी को शब्दों से मुक्त किया था राजन ने, "तो क्या तुम भी पिताजी और मामाजी के फैसले को मान रही हो ? सब कुछ समझते हुए अगर तुम्हारी जैसी लड़कियां ऐसा करेंगी तो नासमझ लड़कियों का क्या होगा. समाज में उगे उन्हीं कांटों को तो उखाड़ना है अपूर्वा. तुम्हें एग्जाम्पल बनना चाहिए अपूर्वा." 'एग्जाम्पल बनना चाहिए.' अपूर्वा ने मन ही मन दोहराया. झुरझुरी-सी हुई थी देह में. तुरन्त भीतर कहीं डेरा जमाये खौफ ने पंख फैलाये थे. "नहीं राजन, एक रिश्ते को बनाने के लिए मैं ढेरों रिश्तों को नहीं काट सकती. उनका क्या कसूर है ? मानुषी का क्या होगा ? मामा के बच्चों का क्या होगा.... ? मां से तो हमेशा के लिए..." कहकर चुप हो गयी थी अपूर्वा. राजन ने बहुत कोशिश की थी अपूर्वा को कनविन्स करने की, पर भावुकता की जकड़न तर्कों को कहां जगह देती है. "ठीक है अपूर्वा." भारी मन से कहा था राजन ने, "पर मैं तुमसे उम्मीद करूंगा कि तुम फिर से सोचना." अपूर्वा जाना नहीं चाहती थी. उसका मन किया दहाड़ें मारकर रो दे. अपने सपनों की फसल को खुद ही तो आग लगायी थी. उसे लगा कि उसके भीतर की चिड़िया ने चहचहाना बन्द कर दिया है. कहीं वह मर तो नहीं गयी ? सोचकर डर लगा था उसे. वह उठकर राजन के साथ बाहर निकल आयी. उसने ऑटो लेकर अन्तिम बार राजन के भोले-उदास चेहर को देखा. मुस्कुराकर बाय कहने की भरसक कोशिश करते राजन की आंखों में भरे पानी को उसने देखा था. उसे राजन के सीने पर सिर रखकर रोने का मन हुआ. बहुत कंट्रोल किया था उसने. ऑटो वाले ने ही मदद की थी, "चलें मैडम...." "चलो", कहकर हाथ हिलाया था उसने राजन की ओर. एक सम्बन्ध के अन्त ने दूसरे सम्बन्ध के आने का रास्ता बनाया था. मामाजी और पिताजी ने पूरी कोशिश की थी ऐसा लड़का ढूंढने के लिए जो पढ़ा-लिखा, प्रगतिशील और सामाजिक सक्रियता वाला हो. मामाजी ने ही एक दिन उसके पास आकर कहा था, "अपूर्वा तुम्हारी शादी के लिए लड़का ढूंढा है. चाहो तो मिल लो उससे." "मेरी चाहतों की कितनी फिक्र है, मेरी चाहत का चयन मुझे पूछे बिना हो. मामाजी मैं कुछ नहीं बोलूंगी, पहले भी तो आपने ही तय किया था. आज लोग ही सब कुछ तय करते हैं. हमारी किस्मत में तो सिर्फ उसे मानना लिखा है." कहकर चुप हो गयी थी, वह. पिताजी अब उससे बात करने में कतराने

लगे थे. मां ने शादी के मसले पर कभी बात नहीं की थी. उनके बीच मां-बेटी से ज्यादा एक औरत होने का अपनापा गाढ़ा हो गया था. शादी की सारी तैयारी मामाजी और पिताजी ने ही पूरी की थी. मामाजी तो शादी जल्दी करके भार और अपराध से शायद मुक्त होना चाहते थे, पर पिताजी चाहते थे कि एम.ए. की परीक्षा दे ले. इसलिए जून तक इन्तजार करना पड़ा था. अगस्त में अपूर्वा की शादी सजातीय समुदाय के अमन से हो गयी थी या कर दी गयी थी.

बिना सपने और चाहतों को पाले अपूर्वा ने शादी के बाद ही अमन को देखा था. बातचीत में आधुनिक ही लगा था. परिवार पुरातन ख्यालों का ही था, इसे अपूर्वा ने हफ्ते भर में ही जान लिया. ऑफिस से पन्द्रह दिन की छुट्टी ले रखी थी अपूर्वा ने. अमन के कमरे में ढेर सारी किताबें थीं. माक्र्सवाद और ढेरों राजनीति-सामाजिक विषय की किताबें. अम्बेडकर, बौद्ध, फुले या दलित आन्दोलन की कोई किताब नहीं दिखी थी. अमन स्कूल में हिस्ट्री का टीचर था. शादी के कुछ दिनों बाद स्कूल जाने लगा था. अपूर्वा दिनभर अकेले बोर होती. घर में किससे बात करे ? अमन स्कूल से सीधे संगठन के ऑफिस जाता या फिर कार्यक्रम में. अपूर्वा को वह इसकी सूचना देता और कभी-कभी तो उसकी भी जरूरत नहीं समझता. छुट्टियां खत्म होने पर जब अपूर्वा ऑफिस पहुंची तो उसे मुक्त होने का अहसास हुआ था- जैसे बंधे खूंटे से गाय खुलकर भागी हो. लेकिन यह मुक्ति का अहसास अस्थायी था. शाम होते ही उसे फिर से बंधना होगा. दाम्पत्य जीवन क्या औरत को कैद करता है ? अपूर्वा ने सोचा.

शादी को पन्द्रह दिन गुजरे थे. घर से दूसरे या तीसरे दिन पिताजी या मां का फोन बिना नागा आता. हर बार वे अमन के व्यवहार और घर के माहौल के बारे में जानना चाहते. उन्हें लगता कि पति का अच्छा व्यवहार और घर के अच्छे माहौल में ही औरत खुश रहती है. इसमें अपनी चाहतों का कोई मोल नहीं. अपूर्वा को अमन जितना आधुनिक लगा था, उतना वह स्वभाव में नहीं था. घर में वह केवल पुरुष था, हिंसक पुरुष. घर आते ही उसे समय पर खाना मिलना चाहिए. कपड़े प्रेस किये हुए चाहिए. स्त्री-पुरुष समानता की बात कहने वाला घर में उसे एक दासी से ज्यादा क्या समझता ? कभी-कभी वह अच्छे मूड में होता तो अपूर्वा को समाज में अमीर वर्ग और गरीब वर्ग के बीच अन्तर का कारण बताता. अन्याय की जड़ें समझाता. ऐसे में जब भी अपूर्वा जाति की बात करती तो कुछ समय वह धैर्य से सुनता, लेकिन अन्त में झल्ला जाता, "तुम भी पता नहीं किस दुनिया में रहती हो. अब उतना जातिभेद नहीं होता. अगर कहीं है भी तो वह क्रान्ति के बाद व्यवस्था बदलने के साथ खत्म हो जायेगा." बाबा साहेब के बारे में कहता, "अम्बेडकर बड़े दार्शनिक थे, पर समाज बदलने की कोई वैज्ञानिक समझ उनके पास नहीं थी. जाति, वर्ग का ही एक हिस्सा है. जाति समाज का मूल आधार नहीं, बल्कि अधिरचना है. सारा दलित आन्दोलन जाति की राजनीति कर रहा है. दलित लेखन, दलित आन्दोलन, राजनीति सब साम्राज्यवादी साजिश है." अपूर्वा के भीतर आक्रोश पनपता पर वह उसे दबोचे रखती. कभी अमन कहता, "अपूर्वा औरत भी शोषित वर्ग का हिस्सा है, पुरुष प्रधानता भी व्यवस्था बदलने पर ही खत्म होगी. औरत को भी समाज बदलने में योगदान देना चाहिए." लेकिन जब अपूर्वा को महीने की पगार मिलती तो उसे अमन की मां यह कहकर ले लेती, "तुम क्या करोगी बेटी, इसको मैं रख लेती हूं. जब जरूरत हो मांग लेना." और अपूर्वा के जरूरत पड़ने पर कहती, "खर्च हो गये सब, घर में इतना खर्चा है कि बस." कई बार तो उसके पास ऑफिस जाने के लिए किराये हेतु भी पैसा नहीं होते. वह अमन से कहती तो वह कहता, "क्या करोगी पैसे का, चलो मैं तुम्हें ऑफिस तक स्कूटर से लिफ्ट दे दूंगा..." अमन के दोस्त भी कभी-कभार घर आते. मीटिंग होती. लड़कियां भी आती. देश-समाज पर क्रान्तिकारी विचार दिमाग से निकलकर घर के माहौल में तैरते रहते. उनकी सारी आवभगत अपूर्वा को ही करनी होती. छुट्टी वाले दिन ही होती थी यह चर्चा. एक छुट्टी होती और उसे भी समाज बदलने वाले क्रान्तिकारी विचार लील जाते... आदमी और औरत की समानता जैसी अनेक शब्द किचन में काम करते उसके कानों गिरते. अपूर्वा को पिताजी, मामाजी और अमन सभी एक जैसे लगे थे. चेहरों पर अलग-अलग विचारों का नकाब लगाये समान संस्कारधर्मी पुरुष. "पुरुष विचारों में कितना रेडिकल होता है लेकिन विचारों की वास्तविक कसौटी क्या घर नहीं होता." घर के कामों में भी उसका बिल्कुल भी मन नहीं लगता. अमने को एक बार अपूर्वा पर बहुत प्यार आया. वह उसे रोमानी बातें करते-करते आदर्श को आकर देने लगा था, "औरतें कितना कष्ट सहती हैं समाज में, पहले पिता के घर में, फिर पति के घर में. न जाने कब ये समाज बदलेगा ? कब हम बेहतर समाज में सांस लेंगे ? अच्छा, अपूर्वा एक बात बताओं, क्या कभी तुम्हारी दोस्ती किसी लड़के से हुई थी ?" अपूर्वा को चुप देखकर फिर कहा, "देखो मैं वैसा संस्कारी पुरुष नहीं हूं जो कुछ पता चलने पर नाराज हो जाऊं. अच्छा चलो, मैं ही बताता हूं. हमारे संगठन की एक लड़की है करुणा. मैं उससे शादी करना चाहता था पर कुछ कारण ऐसे बने कि करुणा तैयार नहीं हो पायी." "क्यों ?" पूछा था अपूर्वा ने.

"वह पढ़ना चाहती थी और संगठन का काम भी करना था. इधर मां का दबाव, रिश्तेदारों के ताने. फिर तुम्हारे बारे में सुना और मैंने हां कर दी." "करुणा की जाति क्या थी." पूछा था अपूर्वा ने. "अरे ! ऐसी कोई बात नहीं है. वैसे करुणा चक्रवर्ती है. जाति संगठन में किसी के लिए महत्व नहीं रखती. सब एक-दूसरे के घर आते-जाते हैं, खाते-पीते हैं. अभी उस दिन आयी तो थी अपने घर, जो गुलाबी रंग सूट पहने थी. पिछले हफ्ते संगठन के ही अमित राय से शादी कर ली. लड़कियां भी कभी-कभी अजीब-सा व्यवहार करती हैं. साल भर पहले शादी न करने का कहकर और अब शादी..." बाकी शब्दों को मुंह में चबाता रहा था अमन.

अपूर्वा ने सोच कि क्या अमन सच में नहीं समझ पा रहा ? क्या वह नहीं जानता कि करुणा ने उससे शादी क्यों नहीं की ? जाति सभी के लिए इम्पोर्टेंट है. चाहे वह कम्युनिस्ट हो या समाजवादी, अम्बेडकरवादी हो या गांधीवादी. जाति अमीर और गरीब में कोई भेदभाव नहीं करती. दलित अमीर हो या गरीब... वह सबकी नज़रों में घृणित है. कुछ घृणा के बिम्ब आंखों में उभर आते हैं और कुछ नहीं.

"अच्छा इसे जाने दो, तुम बताओं अपूर्वा. तुम्हारा भी कोई ऐसा अनुभव है क्या ?" अपूर्वा ने समानता की बात करने वाले अमन द्वारा बार-बार पूछने पर राजन के बारे में बता दिया. ऐसा कुछ था भी नहीं जो बताने लायक न हो. सुनकर अमन कुछ देर चुप रहा, "अच्छा

तो अगर तुम्हारे मामाजी बीच में न आये होते तो तुम आज राजन के आगोश में होती." कहकर बेहुदगी से दांत निपोरे थे, "भई, तुम्हारे मामाजी का तो मुझे अहसान मानना चाहिए." अपूर्वा ने अमन के भीतर कुछ अटका हुआ महसूस किया. आंखों में काले बादल उगते हुए दिखे. अपूर्वा को डर लगा था. अब अमन उससे खिंचा-खिंचा-सा रहने लगा. एक बार अपूर्वा ने उससे बात करनी चाही तो अमन ने उसे झटक दिया था. "वहीं जाओ अपने उस अम्बेडकर के पास. मेरे पास क्या है ?" अपूर्वा ने फिर से बात करने की कोशिश की तो अमन ने उबलते हुए अपूर्वा को चांटा मारा था, "हरामजादी, पता नहीं और क्या किया था उसके साथ." कहकर परे धकेला था.

अपूर्वा ने भीतर चिड़िया की बैचेन चिल्लाहट को महसूस किया. वह सन्न रह गयी. उसका मन दहाड़ें मारने को हुआ. अगले दिन वह चुपचाप ऑफिस के लिए तैयार हुई. अमन और उसके बीच कोई बात नहीं हुई. आज उसके पास किराये के पैसे भी नहीं थे. उसने कमरे में सब जगह तलाश किया. उसे अलमारी में कागज के नीचे दबाकर रखे हुए दस के दो नोट मुड़े हुए मिले. घर से निकलकर वह फोन बूथ तक आयी थी. पहली बार था कि उसने घर पर फोन करके कुछ पैसे ऑफिस में आकर देने के लिए पापा को कहा था. शादी के दो महीने में पहली बार ऐसा हुआ कि अमन घर नहीं लौटा था. उसने अमन की मां से चिन्तित होते हुए पूछा. वह बोली, "अरे, आ जायेगा, बच्चा तो है नहीं, अपने किसी दोस्त के घर रुक गया होगा. वह पहले भी ऐसा करता रहा है, कोई नयी बात नहीं है. फिर अब तो यह तुम्हारी जिम्मेदारी है कि यह बाहर न रुके. मुझसे तो वह बहुत गुस्से में रहता है कि ऐसी बहू ला दी, न तो सुन्दर है न इसे कुछ आता है."

कहकर वह चली गयी. हफ्ते भर तक घर पर नहीं आया था अमन. अब यह उसका रुटीन हो गया था. वह घर आता, कुछ औपचारिक बातें करता, घर से धुले कपड़े लेता और चला जाता. अमन की मां पूरी पगार झपट लेती. अपूर्वा का चेहरा कुम्हलाने लगा था. आंखों में एक तय उदास घिर आयी थी. उसे अपने खर्चे के लिए पिताजी से पैसे मंगाने पड़ते. एक शाम जब यह ऑफिस से लौटी तो उसने अमन को घर पर ही पाया. वह कोई किताब पढ़ रहा था. "क्या चाय बना दूं." अपूर्वा ने पूछा था. अमन कुछ नहीं बोला. अपूर्वा ने चाय बनायी. अमन को चाय देकर वह पास की कुर्सी पर बैठ गयी, "मैं तुमसे कुछ बात करना चाहती हूं." "हां, बोलो." "ऐसा मैंने क्या कर दिया है जो तुम ऐसा व्यवहार कर रहे हो. ऐसा कब तक चलेगा ?" "कैसा कब तक चलेगा." अमन ने कहा. खीज को भीतर बड़ी मुश्किल से रोका था. "क्या तुम्हें नहीं पता मैं क्या पूछ रही हूं." भरसक पोलाइटनेस रखते हुए पूछा. अमन ने कहा, "मुझे कैसे पता तुम क्या जानना चाह रही हो ? मैं कोई ज्योतिषी तो हूं नहीं. इतने दिनों बाद आज आया हूं और आते ही तुमने बखेड़ा खड़ा कर दिया." अमन ने चिल्लाते हुए कहा. "क्या मैंने ही बखेड़ा खड़ा किया है, क्या तुम्हारे घर से बाहर रहने का कारण मैं ही हूं ? अगर ऐसा है तो..." बोलते-बोलते रुक गयी अपूर्वा. "हां-हां, बोलो क्या कहना चाहती हो. मुझे तो कई बार ऐसा लगता है कि तुम अब भी अपने उस...जाकर मिलती हो... तुम अगर जाना चाहो तो..." एक तीखी तल्खी के साथ कहा था अमन ने. "चुप करो अमन तुम अपनी बकवास." कहकर रोने लगी थी अपूर्वा. अमन ने उसके कपड़े अलमारी से निकालकर बाहर फेंक दिये थे और बाहर जाते हुए बोला, "चली जाना अभी, नहीं तो..." अमन के जाने के बाद वह सोचती रही... अनेक प्रकार के विचार उसके दिमाग में आ रहे थे. वह बेचैन हो गयी. खुद को संयमित किया. अपूर्वा ने फैसला कर ही लिया. उसने अपना सामान समेटा...और घर से बाहर निकल आयी. लेकिन वह कहां जाये... ? क्या पिता के घर...लेकिन क्या वह घर उसका अपना है या पति का घर उसका अपना था ? पहले पिता ने शादी करके उसे निकाला था और अब अमन ने. औरत का अपना घर कौन-सा है ? उसने पति के घर से निकलकर पिता के घर भी न जाने का फैसला किया. वह अपनी एक दोस्त के घर पहुंची और कुछ दिन ठहरने को कहा था.

अपूर्वा अब अंधेरे को चीरना चाहती थी. अंधेरे जीवन में सुबह के लिए बेताबी उसने महसूस की. यह एक विराट महाकाव्यात्मक परिवर्तन का आगाज था, जिसकी रोशनी उसके भीतर उग आयी थी. लेकिन...क्या यह समाज, संस्कारी पुरुष, जाति व्यवस्था उसके रोमानी सपनों को उगने देंगे ? सोचकर सर्द हो थरथरायी. वह करे क्या ? ऐसे चैराहे पर वह खड़ी थी जिसके सभी रास्तों पर अलग-अलग विचारधाराओं के मास्क लगाये संस्कारी पुरुष खड़े थे, जिनमें अपने भी शामिल थे और कुछ अजनबी चेहरे भी. अपनी मुक्ति का रास्ता उसे कहीं नज़र न आता. अन्धकार उसका गहराता जा रहा था. उसका अपना क्या है ? न घर है, न सपने हैं, न चाहतें... वह उड़ना चाहती थी, लेकिन उसके पंख कुतर दिये गये थे. सपने बदरंग हो चुके थे.चाहतें कैद हो गयी थीं.

वह गहरे अवसाद से घिर आयी. तीखे द्वन्द्व से दिमाग फटने लगा था किधर जाए... ? एक तरफ मां-बाप और उनका प्यार तो दूसरी तरफ व्यावहारिक जिन्दगी में उनकी जड़ताएं जो जीवन के नये धरातल पर इस डर से नहीं उतरते कि उनकी अपनी ज़मीन खोखली है. एक तरफ पीछ छूट गया प्रेमी और दूसरी तरफ सामन्ती पौरुष का प्रतिनिधि अमन और विचारधाराएं. न कोई बाहर, न कोई घर में लेकिन आज अपूर्वा के पैरों के नीचे अपनी जमीन है, नौकरी है. सभी को परख भी लिया है. अपना रास्ता अब वह स्वयं चुनेगी. उसने तय किया कि नयी दुनिया के ख्वाबों की ताबीर के लिए वह अतीत की स्मृतियों को विस्मृत कर देगी. वह नयी दुनिया बनाने की राह पर निकल पड़ी. उसने संकल्प किया और राजन का फोन डायल करने लगी.....

परिचय

सूरज बड़त्या

लेखक ,शिक्षक व् दलित चिन्तक

हिंदी दलित साहित्य के बेहद जरुरी और चर्चित कहानीकार हैं सूरज बडत्या । इनकी कहानियों का कथानक इनकी वैचारिक वैश्विक समझ को ही नहीं बल्कि भावों की सहज अभिव्यक्ति और सार्थक कलात्मकता इन्हें दलित कहानीकारों से ही नहीं बल्कि अपनी पीढ़ी के अन्य रचनाकरों में भी विरल बनाती हैं । इनकी वैसे छ : किताबें प्रकाशित हैं ।वैचारिक रूप से आंबेडकरवादी विचार को समझाते हुए तीन किताबें हैं । दलित सौन्दर्यशास्त्र पे बेहद चर्चित किताब है " सत्ता संस्कृति और दलित सौन्दर्यशास्त्र "। इन्होनें बहुत सारी क्रांतिकारी दलित कवितायें भी लिखी हैं । तीन पुरस्कार इन्हें अपनी रचनाओं पे अब तक मिल चुके हैं । रचनात्मक लेखन की पहली कहानी की किताब " कामरेड का बक्सा " पे इनको युवा दलित कहानीकार अवार्ड भी मिल चूका है ।

इन्होने "संघर्ष" एवम "युद्धरत आम आदमी" पत्रिका का संपादन किया है और अभी "दलित अस्मिता" पत्रिका के सहायक संपादक हैं । हिंदी की बेहद चर्चित पत्रिका "मंतव्य" के दलित विशेषांक के अतिथि संपादक हैं । काबिले-गौर है कि दिल्ली यूनिवर्सिटी के हिंदी एम्ए के पहले दलित गोल्ड मेडलिस्ट भी हैं । दिल्ली यूनिवर्सिटी से ही पीएच .डी की है ।

इनकी कविताओं का इंग्लिश, पंजाबी , गुजराती मैं अनुवाद हुआ है । इनका कहानी संग्रह " कामरेड का बक्सा " का पंजाबी और गुजराती मैं अनुदित होकर प्रकाशित हो चुका है। अहमदाबाद यूनिवर्सिटी में बी ए के पाठ्यक्रम मैं इनकी कहानियाँ पढाई जाती है । और बाहरवी में ही इनकी कविताएं भी पाठ्यक्रम में लगी हैं । सूरज बडत्या मूल रूप से दिल्ली से ताल्लुक रखते हैं । कहानियों की दूसरी किताब और " किलडीया" उपन्यास शीघ्र प्रकाशित होने वाला है ।

फिलहाल सूरज बडत्या हिंदी के प्रोफेसर के रूप में कार्यरत हैं । संपर्क – badtiya.suraj@gmail.com – Mobile- : +91- 989143166

URL : https://www.internationalnewsandviews.com/story-collection-comrade-box/

INTERNATIONAL NEWS AND VIEW CORPORATION
INVC
अंतरराष्ट्रीय समाचार एवं विचार निगम

12th year of news and views excellency

Committed to truth and impartiality

Copyright © 2009 - 2019 International News and Views Corporation. All rights reserved.